ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

जीवन वृत्तान्त

श्री गुरु हरि राय जी

लेखक : स. जसबीर सिंघ

क्रांतिकारी गुरु नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़
Website : www.sikhworld.info

पौत्र हरिराय जी को गुरयाई सौंपना

श्री गुरू हरिगोविन्द साहब के पाँच पुत्र थे किन्तु दो पुत्रों ने स्वेच्छा से योग बल द्वारा शरीर त्याग दिया था। आप के सबसे छोटे पुत्र त्यागमल, जिस का नाम बदल कर आपने तेग बहादुर रखा था, बहुत ही योग्य थे किन्तु आप तो विद्याता की इच्छा को मद्देनजर रख के अपने छोटे पौत्र हरिराय को बहुत प्यार करते और उनके प्रशिक्षण पर विशेष बल दे रहे थे। आप की दृष्टि में वही सर्वगुण सम्पन्न थे और वही गुरू नानक की गद्दी के उत्तराधिकारी बनने की योग्यता रखते थे। अतः आपने एक दिन यह निर्णय समस्त संगत के सामने रख दिया। संगत में से बहुत से निकटवर्तियों ने कहा – आप तो बिल्कुल स्वस्थ हैं, फिर यह निर्णय कैसा ? किन्तु गुरूदेव जी ने उत्तर दिया – प्रभु इच्छा अनुसार वह समय आ गया है, जब हमने इस मानव शरीर को त्याग कर प्रभु चरणों में विलीन होना है। आपने निकट के क्षेत्र में बसे सभी अनुयायियों को संदेश भेज दिया कि हमने अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति करनी है, अतः समय अनुसार संगत इक्ट्ठी हो ? संगत के एकत्रित होने पर तीन दिन हरियश में कीर्तन होता रहा, समाप्ति पर आपने पौत्र हरिराय जी को अपने सिहांसन पर विराजमान किया और उनकी परिक्रमा की, इसके साथ ही एक थाल में गुरू परम्परा अनुसार कुछ सामग्री उन को भेंट की। बाबा बुड्ढा जी के सुपुत्र श्री भाना जी को आदेश दिया कि वह हरिराय जी को विधिवत् केसर का तिलक लगाएं। जैसे ही सभी गुरू प्रथा सम्पन्न हुई, श्री गुरू हरिगोविन्द जी ने अपने पौत्र श्री हरिराय को दण्ड्वत प्रणाम किया और अपनी दिव्य ज्योति उनको समर्पित कर दी। तद्पश्चात् समस्त संगत को आदेश दिया कि वे भी उनका अनुसरण करते हुए श्री हरिराय जी को गुरू नानक देव जी का उत्तराधिकारी मान कर नतमस्तक हों।

आपने स्वयं एकान्तवास में निवास करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन पश्चात् 19 मार्च 1644 ईस्वी को आपने शरीर त्याग दिया और प्रभु चरणों में विलीन हो गये।

परिचय श्री गुरू हरिराय जी

श्री गुरू हरिगोबिन्द जी के पाँच पुत्र थे। सबसे बड़े पुत्र का नाम श्री गुरदित्ता जी था। श्री गुरदित्ता जी के दो पुत्र थे। श्री धीरमल व श्री हरिराय जी, श्री गुरुदित्ता जी बहुत ही योग्य पुरूष थे किन्तु उन्होंने एक भूल के पश्चाताप में पिता श्री गुरू हरिगोबिन्द जी की नाराजगी को मद्देनजर रखते हुए स्वेच्छा से योगबल द्वारा शरीर त्याग दिया था। अतः जब श्री गुरू हरिगोबिन्द जी ने यह अनुभव किया कि उनके श्वासों की पूँजी समाप्त होने वाली है तो उन्होंने अपने पौत्र श्री हरिराय जी को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। उस समय श्री हरिराय जी की आयु केवल 14 वर्ष थी।

श्री हरिरायजी का प्रकाश नगर कीरतपुर में 19 माघ (शुक्ल पक्ष, 13) संवत 1687 तदानुसार 16 जनवरी सन् 1630 को माता निहाल कौर के उदर से पिता श्री गुरदित्ता जी के गृह में हुआ। आपको आपके दादा श्री हरिगोबिन्द जी, पराक्रमी पुरूष मानते थे। अतः उन्होंने आपको 14 वर्ष की आयु में ही गुरिआई गद्दी दे दी।

गुरू हरिराय जी का विवाह अल्पायु में होगया। जब आप केवल 11 वर्ष के ही थे। आपके ससुर श्री दयाराम जी अनूप नगर के निवासी थे। आपकी पत्नी श्रीमती कृष्ण कौर जी ने कालान्तर में क्रमशः दो बेटों को जन्म दिया। श्री रामराय व श्री हरिकृष्ण जी। आपका वैवाहिक जीवन बहुत सुखमय था।

श्री गुरू हरिराय जी की जीवनचर्या अत्यन्त सादगी से भरी थी। उनके उपदेश पूर्व गुरूजनों की भान्ति बहुत सरल थे, जो जन-साधाारण में बहुत लोकप्रिय हुए।

जैसा कि शुभ कर्मो से धान उपार्जन करो, मिल-बाँट कर खाओ, प्रभु का नाम जपो। इसके अतिरिक्त सद्कर्म करो अथवा बुराई से दूर रहो।

दामन संकोच कर चलो

श्री गुरु हरिगोबिन्द साहब जी अपने पौत्र श्री हरिराय जी से कुछ विशेष लगाव रखते थे । अधिकांश समय उनको अपने पास रखते और विशेष प्रशिक्षण देते रहते । अपने दादा जी की छत्तर-छाया में श्री हरिराय जी भी बहुत प्रसन्नचित रहते एक दिन प्रातः काल दादा-पोता अपने निजि उद्यान में टहल रहे थे कि गुरु हरिगोबिन्द जी को एक विशेष फूल बहुत भा गया वह साधारण फूलों की अपेक्षा कुछ अधिक सुन्दर और बड़ी आकृति का था । गुरुदेव जी ने उस फूल की प्रशंसा की और आगे बढने लगे किन्तु वह फूल श्री हरिराय जी के

दामन से उलझ गया और खीचाव पडने पर टूटकर बिखर गया । यह देखकर गुरुदेव जी ने श्री हरिराय जी को सतर्क किया यदि दामन बड़ा हो तो संकोच कर चलना चाहिए । इस वाक्य ने श्री हरिराय जी के कोमल मन पर गहरी छाप छोड़ी वह जीवन का रहस्य जानने के लिए उस वाक्य में छिपे भाव को समझने के लिए प्रयास करने लगे उन्होंने उस वाक्य का अर्थ निकाला, यदि प्रभु ने बल दिया हो तो उसे प्रयोग करते समय संयम से काम लेना चाहिए और उन्होंने इस वाक्य के महत्त्व को समझते हुए समस्त जीवन अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं किया ।

दैनिक जीवन

श्री गुरू हरिराय जी ने पूर्व गुरूजनों की भान्ति ही अपना जीवन संयमी रखा। आपका दैनिक कार्यक्रम भी अपने पूर्व गुरूजनों की भान्ति नियमब) तथा सात्विक ही था। आपने भी अपना जीवन परहित के लिए समर्पित कर दिया और सर्वदा प्रभु के गुणगान में मग्न रहते और उसकी लीला में सन्तुष्ट रहने की प्रेरणा करते।

श्री गुरू हरिराय जी प्रातःकाल (अमृत बेला) में बिस्तर त्याग देते। फिर शौच स्नानसे निवृत्त होकर एकान्त में बैठ कर प्रभु स्मरण में लीन हो जाते। सूर्य उदय होते ही उनका दीवान सज जाता। वहाँ संगत हरि कीर्तन में जुड़ जाती तद्पश्चात आप अपने प्रवचनों से प्रतिदिन संगत का मार्ग दर्शन करते और जिज्ञासुओं की समस्याओं अथवा शंकाओं का समाधान करते। उपरान्त नाश्ते के समय संगत के साथ पंक्तियों में बैठकर लंगर से भोजन ग्रहण करते। अपने दादा गुरू हरिगोबिन्द जी के आदेश अनुसार 2200 बाईस सौ जवानों का सैन्य बल रखा हुआ था। जो कि भक्ति के साथ शक्ति के संगम का प्रतीक था, जिसका आपके दादा जी ने सूत्रपात किया था। सत्संग से अवकाश मिलते ही आप अपने सैनिकों का निरीक्षण करने चले जाते, वहाँ सभी प्रकार की सैन्य गतिविधियों पर विचार विमर्श होता। आप दोपहर का भोजन अपने परिवार के सदस्यों के साथ करते। इसके उपरान्त कुछ देर के लिए विश्राम करते तद्पश्चात् आप अपनी सैनिक वेश-भूषा धारण कर अपने अंगरक्षकों के संग शिकार पर निकल जाते। आप इन गतिविधियों को केवल सैनिक प्रशिक्षण के रूप में ही लेते। इन अभियानों से किसी जीव हत्या का प्रयोजन नहीं होता था। आप का एकमात्र लक्ष्य अपने योद्घाओं का मनोबल बढ़ाना होता था, जिस से सिक्ख जगत् में वीरता के प्रति अनुराग बढ़े।

संध्या के समय दीवान में रहिरास के पाठ के उपरान्त आप स्वयं संगत को वीरों, योद्घाओं की गाथाएं सुनाते अथवा ढ़ाढ़ी कवियों द्वारा वीरता के प्रसंग सुनवाने का प्रबन्धा करते। आप सिक्खों को समय के अनुकूल ढ़ालना चाहते थे, वैसे तो आप बहुत शान्त स्वभाव के थे, लड़ाई झगड़ों से अरूचि थी किन्तु आपको इतिहास की पूर्व घटनाओं के कड़वे अनुभव सतर्क रहने के लिए विवश करते थे। यह तथ्य सत्य भी थे। शक्ति सन्तुलन ही शान्ति का कारण बनती है, इसलिए आप हर कीमत पर उसे बनाए रखने में विश्वास रखते थे। आपके जीवनकाल में बहुत सी राजनैतिक उथल-पुथल हुए, जिसके परिणाम स्वरूप आप पर तीन बार विशाल सैनिक आक्रमण हुए, किन्तु प्रभु कृपा से आप तक सैन्य बल पहुँच ही नहीं पाया। इन घटनाओं का विस्तार से आगामी अधयायों में चर्चा करेंगे।

युवराज दारा शिकोह का कीरतपुर आगमन

श्री गुरू हरिराय जी ने कीरतपुर नगर में एक विशाल आर्युवैदिक औषधाालय खोल रखा था, जिसकी प्रसिद्घी दूर दूर तक फैली हुई थी। गुरूदेव जी जहाँ आधयात्मिक उन्नति के लिए ज्ञान प्रदान करते थे वहीं शारीरिक रोगों से भी छुटकारा प्राप्त करने के लिए जन साध ाारण को औषधियां वितरण करते थे। आपने उस समय के विख्यात वैद्य अपने पास रखे हुए थे जो कि विशेष प्रकार की औषधियों का निर्माण करते थे जो असाधाय रोगों के काम आती थी।

सम्राट शाहजहान के चार पुत्र थे। वह अपने बड़े पुत्र दारा शिकोह को बहुत चाहता था, क्योंकि वह हर दृष्टि से योग्य था किन्तु औरंगज़ेब इस चाहत को पसन्द नहीं करता था। वह कपटी था। अतः उसने दारा शिकोह को भोजन में एक विशेष प्रकार का विष दे दिया। जिससे दारा शिकोह के पेट में हर समय पीड़ा रहने लगी। राजकीय वैद्यों ने बहुत उपचार किया किन्तु रोग जड़ से नहीं गया। वैद्यों के विचार से उस रोग की विशेष प्रकार की औषधि कीरतपुर श्री गुरू हरिराय जी के औषधाालय में ही उपलब्धा थी। सम्राट शाहजहान दुविधाा में पड़ गया। वह विचारने लगा कि मैं सम्राट हूँ, फकीरों के यहाँ से कोई वस्तु माँगते हुए मुझे लाज आती है। इसके अतिरिक्त पिछले लम्बे समय से दोनों पक्षों के सम्बन्धा में बहुत कड़वाहट रही थी क्योंकि शाही सेना ने उनके दादा श्री हरिगोबिन्द जी पर चार आक्रमण किये थे। इस पर वहाँ उपस्थित पीर हसन अली और शेख अबू गंगोही ने कहा- वह तो गुरू नानक का घर है वहां से माँगने में शर्म कैसी ? फिर वह पीर लोग हैं, किसी के लिए भी हृदय में मैल नहीं रखते।

सम्राट ने पीर हसन का कहा मान कर गुरू हरिराय जी को एक विनम्र पत्र लिखा और माँग की आप जी मेरे दूतों को अमुक दवा

देने की कृपा करें।

गुरूदेव को जब शाही दूत के आने का प्रयोजन का पता चला तो उन्होंने उनका हार्दिक स्वागत किया। वे गुरू घर की शान देखकर बहुत प्रभावित हुए। गुरू के लंगर का वैभव देखकर तो वे सन्तुष्ट हो गये। गुरूदेव जी ने अपने वैद्यों को बुलाकर विशेष औषधियाँ देने के आदेश दिये। दूत वापस लौट गये। जब युवराज दारा शिकोह ने उन औषधियों का सेवन किया तो वह कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गया। इस घटना का दाराशिकोह के हृदय पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। वह पीरों-फकीरों का बहुत आदर करता था। उसने एक विशेष कार्यक्रम बनाकर गुरूदेव से मिलने का निश्चय किया। सम्राट शाहजहान ने उसे पँजाब का राज्यपाल नियुक्त कर दिया था, इसलिए दिल्ली से लाहौर जाते समय वह गुरूदेव का धान्यवाद करने बहुत से उपहार लेकर कीरतपुर पहुँचा।

गुरूदेव जी ने युवराज का भव्य स्वागत किया और उससे बहुत से विषयों पर आधयात्मिक विचार-विमर्श हुआ। दाराशिकोह बहुत उदारवादी व्यक्तित्त्व का स्वामी था, अत: उसे गुरूदेव के उपदेश बहुत अच्छे लगे।

बिहार 'गया' का संन्यासी भगवान गिरि

महन्त भगवान गिरि, गया क्षेत्र के मुख्य आश्रम का संचालक था। यह विष्णु भक्त एक बार अपने मत का प्रचार करने अथवा तीर्थ यात्रा करने देश घूमने को निकले। इनके साथ इनके बहुत से शिष्य भी थे। रास्ते में इन्होंने कई स्थानों पर गुरूनानक देव जी और उनके उत्तराधिकारियों की उपमा सुनी। इस पर उनके मन में विचार आया, क्यों न एक बार उनके दर्शन ही कर लिये जायें। यदि वह वास्तव में पूर्ण पुरूष (प्रभु में अभेद) हैं तो हमें उनसे आत्मज्ञान मिल सकता है और हमारी जन्म जन्म की भटकन समाप्त हो सकती है। यह जिज्ञासा लेकर भक्त गिरि जी कीरतपुर के लिए चल पड़े। जब उन्हें मालूम हुआ कि इस समय गुरू नानक की गद्दी पर एक किशोर अवस्था का बालक विराजमान है, जिसका नाम हरिराय जी है तो उनके मन में एक अभिलाषा ने जन्म लिया तथा वह विचारने लगे यदि यह युवक कलावान है तो मुझे मेरे इष्ट के रूप में दर्शन देकर कृतार्थ करें।

आखिर आप कीरतपुर गुरू दरबार में अपने शिषयों के साथ मन में एक संकल्प लेकर पहुँच ही गये। आप जैसे ही गुरूदेव के सम्मुख हुए, आपको आसन पर अपनी कल्पना के अनुरूप गुरूदेव चतुर्भुज रूप धाारण किये विष्णु दिखाई दिये। यह दिव्य आभा देखकर आप नतमस्तक हो, बार बार प्रणाम करने लगे। तभी आप धयानग्रस्त हो गये। कुछ समय पश्चात आप सेुद्व में लोटे तो आपने श्री गुरू हरिराय जी को उनके वास्तविक स्वरूप में देखा। उस समय आपने उनके चरण पकड़ लिये और कहा - मैं भटक रहा हूँ, मुझे शाश्वत ज्ञान देकर कृतार्थ करें। गुरूदेव ने उन्हें सांत्वना दी और कहा - आप की अवश्य ही मनोकामना पूर्ण होगी किन्तु आप तो संयासी हैं। अत: आप हमारे वैरागी सम्प्रदाय बाबा श्री चन्द जी की गद्दी पर विराजमान श्री मेहरचन्द जी के पास जायें। वह आपको गुरू दीक्षा देंगे। आज्ञा मान कर भक्त भगवान गिरि जी श्री मेहरचन्दजी के पास जा पहुँचे। .उन्हें प्रणाम कर आपने मन की तृष्णा और गुरू आज्ञा बताई। महन्त मेहरचन्द जी ने उनके आने का प्रयोजन समझा और अपने यहाँ के सेवा कार्यो में उनको व्यस्त कर दिया किन्तु जल्दी ही भगवान गिरि जी ने महन्त मेहरचन्द जी को अपने विषयमें बताना शुरू किया कि गया नगर में उनका एक बहुत बड़ा आश्रम है जिसके वह महन्त हैं और इस सम्प्रदाय के 360 के लगभग अन्य शाखायें हैं जो देशभर में फैली हुई हैं। इस प्रकार हमारे हजारों की गिनती में शिष्य हैं।

महन्त श्री मेहरचन्द जी उनके मुख से स्वयं की बड़ाई सुनकर हँस पड़े और कहने लगे, भक्त भगवान गिरि जी ! अभी आपके हृदय से अभिमान की बू है कि मैं एक साधूमण्डली का मुखिया हूँ। यह मोह जाल और अहं भाव ने आपको भटकने के लिए विवश किया है, नहीं तो आप ठीक स्थान पर पहुँच ही गये थे। मैं भी सोच रहा था कि क्या कारण हो सकता है कि आप समुद्र से प्यासे रह कर कुएं के पास आ गये हैं ? यदि आप शाश्वत ज्ञान चाहते हैं तो मन से बड़पन का बोझा उतार फैंके और विनम्र होकर फिर से श्री गुरू हरिराय जी के चरणों में लौट जाएं क्योंकि वही पूर्ण गुरू हैं।

भक्त भगवान गिरि को एक झटका लगा उसने अनुभव किया कि उसमें सूक्ष्म अहं भाव तो है और इसी प्रकार सूक्ष्म माया की पकड़ भी है, जो छूटती ही नहीं। वह मेहरचन्द जी के सुझाव पर पुन: गुरूदेव के समक्ष उपस्थित हुआ। अब वह सच्चे हृदय से शिष्य बनना चाहते थे इसलिए उन्होंने अपने संन्यासी होने का आडम्बर उतार फैंका जो कि गुरू शिष्य में बाधाक बन रहा था। यही बात उसने अपने सभी मित्रों से कही कि यदि वह गुरूदेव से दीक्षा लेकर नव जीवन चाहते हैं तो वे भी सच्चे मन से संन्यासी होने का बोझा उतार दे और मेरे साथ गुरू चरणों में समर्पित होने चले।

इस बार भक्त भगवान गिरि ने गुरू चरण पकड़ लिये और रूदन करने लगे कि हमें स्वीकार कर लो। इस प्रकार उन्होंने अपने नेत्रों के जल से गुरू चरण धाो डाले। गुरूदेव ने उनकी सच्ची भावना देखकर उन्हें गले लगा लिया और गुरू दीक्षा में नाम दान दिया जिससे उन्हें दिव्य ज्योति से साक्षात्कार में देरी नहीं लगी और वह आत्म रंग में रंगे गये। इस प्रकार गुरू चरणों में कुछ दिन व्यतीत करने पर उन्होंने

घर लौटने की आज्ञा मिल गई। किन्तु गुरूदेव जी ने उन्हें कहा कि आप अब अपने क्षेत्र में समाज सेवा में लग जायें और गुरू नानक साहब के सि)ान्तों का प्रचार करें।

भाई जीवन जी

श्री गुरू रामदास जी के दरबार की बाबा आदम जी ने बहुत सेवा की। उनकी सेवा से सन्तुष्ट होकर गुरूदेव जी ने उनकी इच्छा अनुसार आशीष दी कि आपकी मनोकामनाएं पूर्ण हों। अतः वृद्धवस्था में उनके घर पुत्र ने जन्म लिया, जिसका नाम उन्होंने गुरू की आज्ञा अनुसार भगतू रखा। जब भगतू जी युवावस्था में आये तो वह गुरू अर्जुनदेव जी के अनन्य सिक्खों में गिने जाने लगे। भाई भगतू जी ने श्री गुरू हरि गोबिन्द तथा श्री हरि राय जी के समय में भी उसी प्रकार गुरू घर की सेवा जारी रखी। अब वह वृद्धावस्था में पहुँच गये थे। किन्तु उनके दो पुत्र जीवन जी व गौरा जी अपने पिता जी की भान्ति गुरू चरणों में समर्पित रहते थे।

श्री गुरू हरिराय जी अपने भतीजे के विवाह पर करतारपुर नगर गये हुए थे तो वहाँ एक ब्राह्मण के पुत्र की अक्स्मात् मृत्यु हो गई। उसके माता पिता बहुत विलाप करने लगे। उनके विलाप को देखकर किसी व्यक्ति ने उनको बहका दिया कि आपका पुत्र जीवित हो सकता है, यदि आप उसके शव को श्री गुरू हरिराय जी के पास ले जाएं। इस ईर्ष्यालु व्यक्ति का लक्ष्य गुरू जी के प्रताप को ठेस पहुँचाने की थी वह चाहता था कि किसी प्रकार गुरू हरिराय जी असफल हों और फिर लोग उनकी खिल्ली उड़ाए। जब यह शव गुरू दरबार लाया गया तो गुरूदेव जी ने कहा - 'मृत्यु अथवा जीवन, प्रभु के आदेश के बन्धो होते हैं, इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति इसे जीवित देखना चाहता है तो उसे अपने प्राणों की आहुति देनी होगी। गुरू केवल प्राणों के बदले प्राण बदलवा सकता है'। यह सुनकर सब शान्त हो गये। ईर्ष्यालु तत्त्व तो गुरूदेव जी को नीचा दिखाना चाहते थे किन्तु गुरू के सिक्ख यह कैसे सहन कर सकते थे ? जब यह बात भाई जीवन जी ने सुनी तो उन्होंने शरणागत की लाज रखने के लिए गुरूदेव जी से कहा - 'मैं उस लड़के के लिए अपने प्राण बलिदान करने को तैयार हूं '। गुरूदेव ने कहा - आप की जैसी इच्छा है, करें। इस पर भाई जीवन जी एकान्तवास में जाकर मन एकागार कर आत्म ज्ञान से शरीर त्याग गये, जिससे वह मृत ब्राह्मण बालक जीवित हो गया। इस त्याग की गुरूदेव ने बहुत प्रशंसा की और कहा - भाई जीवन जी गुरू घर का मान रखने के लिए आत्म बलिदान दे गये हैं। वह इतिहास में अमर रहेंगे।

बालक फूल व संदली

श्री गुरू हरिराय जी अपनी प्रचार फेरी के कार्यक्रम के अन्तर्गत मालवा क्षेत्र के लोगों के पास पहुँचे। कभी इस क्षेत्र के लोगों ने श्री गुरू हरिगोबिन्द साहब जी को उनके तीसरे युद्ध में सहयोग दिया था। इनकी कुर्बानियों के बल पर शाही सेना पराजित होकर भाग गई थी। यहाँ के स्थानीय निवासियों ने आपका भव्य स्वागत किया। आपको अपने बीच पा कर, अपने को धान्य मानने लगे। यहाँ का एक निवासी रूप चन्द जो श्री गुरू हरिगोबिन्द जी की सेना में था, जिसने चौथे व अन्तिम यृद्ध में वीरगति पाई थी, अपने पीछे दो शिशु छोड़ गया था, जो अब तरूण अवस्था में थे, किन्तु अभावग्रस्त, दरिद्रता का जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनका एक चाचा था, चौधारी काला, वह अपने भतीजों की इस दुर्दशा से दुखी था। जब काले को गुरू हरिराय जी के गाँव में पधारने का समाचार मिला तो उसने सोचा कि उन्हें यदि बच्चों की आर्थिक स्थिति के बारे में बताया जाये तो गुरूदेव अवश्य ही उनकी सहायता करेंगे। अतः उसने अपने भतीजों को कुछ समझाया-बुझाया और गुरू हरिराय जी के दरबार में जा उपस्थित हुए।

गुरू हरिराय जी उस समय दीवान सजा कर संगतों की समस्याएं सुनकर उनका समाधाान कर रहे थे। तभी चौधारी काले के सिखाये उसके भतीजों ने गुरूदेव को शीश झुका कर अपना पेट बजाना शुरू कर दिया। उनके इस करतब से गुरू हरिराय जी मुस्करा दिये और बच्चों के प्रति उनके हृदय में स्नेह उमड़ पड़ा। गुरूदेव ने चौधारी काले की ओर संकेत किया और पूछा - 'चौधारी, ये बच्चे क्या कर रहे हैं।'

तब चौधारी ने उत्तर दिया कि हजूर बच्चे भूखे हैं। गुरूदेव मुस्करा कर बोले - 'यह तो बड़ा अनोखा अंदाज है, अपनी बात कहने का ? कौन हैं ये ?'-

'चौधारी बोला हजूर, ये मेरे भाई रूपचन्द के बेटे हैं, जो शाही सेना से जूझते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे।'

गुरूदेव ने आश्चर्य में कहा - 'हमारे यौद्धा के पुत्र और भूखे ?' दया के सागर के हृदय में स्नेह उमड़ पड़ा और उन्होंने बच्चों को निकट बुलाकर उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की और आशीष दी कि तुम भूखे नहीं रहोगे, तुम और तुम्हारी सन्तानें इस क्षेत्र की नरेश बनेंगी।

जब चौधारी काला यह खुशखबरी लेकर घर लौटा, उसकी पत्नी ने कहा - तुमने अपने भतीजों की तो किस्मत बदल डाली, परन्तु

अपने बच्चों के विषय में भी कुछ सोचा है ? अब वह तुम्हारे भाई के लड़कों के मोहताज होंगे।

इस पर चौधारी काले ने कहा – तुम्हारा क्या मतलब है ? उत्तर में उसकी पत्नी बोली – अपनी संतानों के लिए भी गुरू जी से कोई ऐसी आशीष माँगो कि वे भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें।

यह तो तुमने अच्छी याद दिलाई। चौधारी काले ने कहा – मैंने अपनी संतानों के लिए तो कुछ माँगा ही नहीं। मैं फिर गुरूजी के पास जाऊँगा। उनका हृदय बहुत विशाल है। वह हमारी सन्तान का भाग्य भी बदल देंगे। इस प्रकार पत्नी के कहने पर चौधारी काले एक बार फिर गुरूदेव जी के समक्ष हाजिर हुआ।

गुरूदेव – चौधारी काले को देखकर बोले – आओ चौधारी अब कैसे आना हुआ ?

गुरूदेव ! चौधारी हाथ जोड़ और शीश झुका कर बोला – आपने मेरे भतीजों की भाग्य रेखा तो बदल दी है। अब कुछ ऐसा कीजिए कि मेरी सन्तान का भाग्य भी प्रबल हो जाए।

गुरूदेव ने कहा – तुम्हारी माँग भी उचित ही जान पड़ती है, अच्छा ठीक है। तुम्हारी संतान भी यशस्वी होगी। उनके अधिाकार क्षेत्र में बाइस गाँव होंगे और वह आत्मनिर्भर होंगे, किसी का उनको हाला नहीं भरना पड़ेगा। चौधारी काला खुशी खुशी घर लौट गया।

सचमुच कालान्तर में गुरूदेव के शब्द सत्य सिद्व हुए। फूलकियां रियासतें इन्हीं भाइयों की थी, जिन्होंने सिक्खी के प्रचार में भी अपना योगदान दिया।

नोट : पटियाला, नाभा और जिंद फुलकियां रियासतें कहलाती हैं, ये बालक फूल की सन्ताने थी ।

समृद्वि के लिए गुरू चरणों में प्रार्थना

श्री गुरू हरिराय जी के दरबार में एक स्थानीय सिक्ख प्रार्थना करने लगा, 'हे गुरूदेव ! मैं आपका सिक्ख हूँ, हमारे घर में कई पीढ़ियों से सिक्खी चली आ रही है। मैंने कुछ वर्ष पहले कीरतपुर में एक छोटी सी दुकान खोली थी, जो कि आपकी दया से बहुत सफल रही थी, किन्तु अब मैं पिछले वर्ष से घाटे में जा रहा हूँ, कृपया कोई उपाय बतायें, जिससे मेरे व्यापार में पुन: बरकत पड़ने लग जाए।'

उसका यह निवेदन सुनकर गुरूदेव जी मुस्करा दिये और बोले – मेरे प्यारे सिक्ख तुम्हें याद है, जब तुम इस नगर में आये थे तो तुम्हारे पास रहने को एक झोंपड़ी थी जो कि हमारे दरबार के निकट थी। अब तुमने एक पक्का मकान नगर के बाहर बना लिया है। उन दिनों तुम्हारी पत्नी अथवा बच्चे जब भी दर्शनों को आते थे तो अपने घर से कुछ न कुछ रसद लेकर दर्शन भेंट रूप में गुरू जी के लंगर में डालते रहते थे, अत: इस प्रकार तुम्हारे घर से तुम्हारी आय का दसवां भाग गुरू कोष में पहुँचता रहता था। जिससे तुम्हारे व्यवसाय में बरकत पड़ती रहती थी। किन्तु अब तुम्हारा घर दूर होने के कारण वह दर्शन भेंट रूप में रसद आनी बन्द हो गई है, जिस कारण तुम्हारे व्यवसाय में बरकत समाप्त हो गई है। यदि तुम चाहते हो कि फिर से तुम्हारी आर्थिक दशा में सुधाार हो तो तुम्हें अपनी आय का दसवां हिस्सा गुरू के लंगर अथवा कोष में डालना ही चाहिए। ऐसा करने पर तुम्हारी उन्नति के सभी मार्ग खुल जाएंगे। सिक्ख ने गुरूदेव जी द्वारा बताई गई युक्ति को समझा और उस पर सदैव आचरण करने लगा, जिससे उसके व्यवसाय में दिन दोगुनी रात चौगुनी उन्नति होने लगी।

भाई गौरा जी

भाई भगतू जी, श्री गुरू अर्जुन देव जी के समय से ही गुरू घर के अनन्य सिक्ख चले आ रहे थे। श्री गुरू हरिराय जी के समय में यह प्रौढ़ावस्था में पहुँच गये थे। कुछ वर्ष पूर्व उनकी पत्नी का देहान्त हो गया था और उन्होंने एक नया विवाह रचा लिया किन्तु आपकी अकस्मात् मृत्यु होगई। जिस कारण आप की नई दुल्हन अभी युवा ही थी। भाई भक्तु जी के दोनों पुत्र जीवन व गौरा जी अपनी सौतेली माँ का बहुत ही आदर करते थे। एक दिन गुरूदेव के एक निकवर्ती सेवक ने भाई भगतू जी की विधावा पत्नि जो कि अति युवा थी, के समक्ष पुनर्विवाह का प्रस्ताव रखा, जो कि उन्होंनें इन्कार कर दिया और बाकी जीवन स्वर्गीय पति की स्मृति में व्यतीत करने की इच्छा बताई। जब यह बात स्वर्गीय भगतू जी के पुत्र गौरा जी को मालूम हुई तो उन्होंने इस प्रस्ताव में अपना अपमान समझा और क्रोधा में श्री जस्सा जी की हत्या करवा दी।

भाई जस्सा जी गुरू हरिराय जी के परमसेवक थे। उनकी हत्या गुरूदेव को सहन नहीं हुई। उन्होंने भाई गौरा को एक अपराधाी माना और उसे उसकी करतूत की सजा देने की बात कही। उधार भाई गौरा भी अपनी भूल पर पश्चाताप कर रहा था, किन्तु उस से भावुकता में हत्या हो गई थी। अब वह स्वयँ को अपराधाी मानकर दण्डित करना चाहता था और मानसिक तनाव से मुक्ति प्राप्त करने के लिए युक्ति सोचने लगा। आखिर उनको एक युक्ति सूझी कि किसी भी प्रकार सेवा करके गुरूदेव को प्रसन्न किया जाये, जिससे वह मुझे मेरे जघन्य अपराधा के लिए क्षमा दान दे दें। किन्तु वह गुरूदेव के सम्मुख आ नहीं सकता था। अत: गुरूदेव जी जहाँ भी जाते वह उनके पीछे अपने

शस्त्रधाारी सहयोगियों सहित इस प्रकार मंडराता, जिस प्रकार उसकी सुरक्षा कर्मियों के रूप में नियुक्ति की गई हो।

एक बार गुरूदेव जी करतारपुर से कीरतपुर लौट रहे थे कि सतलुज नदी पार करते समय उनका परिवार पीछे छूट गया। इतफ़ाक से दूसरी तरफ से भूतपूर्व जरनैल मुखलस खान का पुत्र मुहम्मदयार खान एक सैनिक टुकड़ी के साथ दिल्ली को जा रहा था। मुखलस खान श्री हरिगोबिन्द जी के हाथों लौहगढ़ के युद्ध में मारा गया था। बदला लेने का उचित अवसर देखकर मुहम्मदखान ने गुरूदेव के परिवार पर आक्रमण कर दिया, जैसे ही यह सूचना भाई गौरा को मिली वह तुरन्त सतर्क हुआ और मुहम्मद खान की सैनिक टुकड़ी पर टूट पड़ा। कड़े मुकाबले में दोनों पक्षों के कुछ सैनिक खेत रहे परन्तु मुहम्मदखान अपना पक्ष कमजोर देखकर वहाँ से भाग निकला। इस प्रकार समय रहते भाई गौरा ने कठिन समय में गुरूदेव जी के परिवार को सुरक्षा प्रदान कर दी।

जब इस घटना की सूचना गुरूदेव जी को मिली तो वह भाई गौरा की सेवा से सन्तुष्ट हुए और उन्होंने उसे पिछली भूल के लिए क्षमा प्रदान कर दी।

भाई पुंगर जी

भाई पुंगर जी श्री गुरू हरिराय जी के चरणों में उपस्थित हुए और गुरू दीक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे। गुरूदेव जी ने पुंगर जी की तीव्र अभिलाषा देखकर वचन दिया कि यदि तुम श्री गुरू नानकदेव जी के तीन प्रमुख सिद्वांतों अनुसार जीवन व्यतीत करने का दृढ़ संकल्प करते हो तो तुम्हें नामदान दिया जा सकता है। भाईजी ने कहा – मैं समस्त जीवन इन तीनों सिद्धान्तों पर आचरण करते हुए निर्वाह करूँगा। गुरूदेव जी के प्रमुख सिद्वान्त समस्त जगद् प्रसिद्व हैं। किरत करो अर्थात परिश्रम से धान अर्जित करो, वंड छक्को अर्थात बाँट कर खाओ और तीसरा नाम जपो अर्थात प्रभु भजन में प्रत्येक क्षण व्यस्त रहो अर्थात धयान में प्रभु की सर्वव्यापक शक्ति को हर क्षण स्वीकार्य रखो।

भाई पुंगर जी गुरू दीक्षा प्राप्त कर अपने गाँव लौट गये और गुरू उपदेशों अनुसार जीवन व्यतीत करने लगे। वह सभी जरूरतमंदों की आर्थिक सहायता करते थे और आये–गये परदेशियों की भोजन व्यवस्था और विश्राम इत्यादि की देखभाल भी करते थे।

एक बार की बात है एक संयासी उनके गाँव आ गया। उसको रात विश्राम के लिए स्थान तथा भोजन की आवश्यकता थी। उसे स्थानीय निवासियों ने बताया कि वह भाई पुंगर के यहाँ ठहर जायें क्योंकि वह सभी अतिथियों की मन लगा कर सेवा करते हैं। सन्यासी, भाईजी के यहाँ कुछ दिन ठहरा। उसने भाई जी द्वारा निष्काम सेवा देखी वह सन्तुष्ट हुआ, उसे ज्ञात हुआ कि भाई पुंगर जी एक साधाारण श्रमिक है, किन्तु सेवा भक्ति में सबसे आगे है तो संन्यासी विचारने लगा क्यों ना मैं इस महान परोपकारी निष्काम सेवक को यह अमूल्य निधिा सौंप दूं जो मेरे पास किसी श्रेष्ठ पुरूष के लिए धारोहर के रूप में सुरक्षित रखी हुई है। बहुत सोच विचार के पश्चात् संन्यासी ने अपनी गाँठ में से एक पत्थर निकाला और उसे भाई पुंगर जी की हथेली पर रखते हुए कहा– मैं बहुत लम्बे समय से किसी उत्तम पुरूष की तलाश में था, जो मानव समाज की बिना भेदभाव सेवा कर सके, आखिर मुझे आप मिल ही गये हो। मेरी दृष्टि धाोखा नहीं खा सकती। आप को जो मैं अमूल्य निधिा सौंप रहा हूँ, आप उस के पात्र हैं और मुझे पूर्ण आशा है कि आप इस का सदुपयोग ही करोगे। इस पर भाई पुंगर जी ने संन्यासी से पूछा कि यह क्या है? उस संन्यासी ने उस पत्थर का रहस्य उनके कान में बता दिया और कहा – इससे आप जितना धान चाहे, प्राप्त कर सकते हैं – यह पारस है। इसके स्पर्श मात्र से धाातु सोने का रूप ले लेती है। भाई पुंगर जी ने संन्यासी से कहा – हमें तो धान की कोई आवश्यकता ही नहीं है किन्तु संन्यासी कुछ अधिाक बल देने लगा और उसने कहा – ठीक है, आप कुछ दिन आवश्यकता अनुसार इस का प्रयोग कर लें फिर मैं लौट कर इसे वापस ले जाऊँगा। तब भाई भुंगर जी ने कहा – अच्छा आप इसे अपने हाथों से किसी सुरक्षित स्थान में रख दें। संन्यासी ने ऐसा ही किया और वह चला गया।

लगभग एक वर्ष पश्चात् जब संन्यासी भाई पुंगर जी ने गाँव में लौट कर आया तो उसने पाया कि भाई जी उसी गरीबी की दशा में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उसने भाई जी से प्रश्न किया कि आपको मेरे दिये हुए पारस पत्थर का प्रयोग क्यों नहीं किया। इस पर उत्तर मिला कि धाातु खरीद कर लाना फिर उससे स्वर्ण बनाना, फिर बेचना एक लम्बा जौखिम का काम था, हम तो स्वर्ण वैसे ही बना लेते हैं। संन्यासी आश्चर्य में पड़ गया। उसने कहा कि वह कैसे ? तब पुंगर जी ने एक पत्थर उठाया और कहा कि सोना बन जा, बस फिर क्या था, वह पत्थर उसी क्षण स्वर्ण रूप हो गया। तभी संन्यासी उनके चरणों में पड़ गया और पूछने लगा कि आप जब इतनी महान आत्मशक्ति के स्वामी हैं तो फिर इतना गरीबी वाला जीवन क्यों जी रहे हो ? उत्तर में पुंगर जी ने कहा – मुफत में आया माल अथवा धान सदैव व्यक्ति को ऐयाशी की ओर प्रेरित रहता है, जिससे प्रभु हृदय से निकल आता है। अत: व्यक्ति को सदैव परिश्रम से धान अर्जित करना चाहिए।

भाई काले दुलट जी

श्री गुरु हरिराय जी के समय कीरतपुर के आस-पास के क्षेत्रों की बहुत सी भूमि लंगर में अनाज की आपूर्ति के लिए खरीद ली गई थी इस के अतिरिक्त कुछ भूमि गुरुदेव को स्वेच्छा से कुछ बड़े जमीदारों ने समर्पित कर दी थी । अत: गुरुदेव इस भू-क्षेत्र को किसानों को बटवारे में बोने के लिए दे देते थे । एक बार फसल पक्क कर तैयार हो गई बटवारे का अनाज प्राप्त करने के लिए श्री हरिराय जी ने भाई काले दुलट को भेजा । उन्होंने गुरु आदेश के अनुसार किसानों से अपने भाग का अनाज प्राप्त कर लिया किन्तु वहां पर कुछ निम्न वर्ग के मजदूर तथा भिखारी इत्यादि लोग इक्ट्ठे हो गये और वे गुरु के नाम की दुहाई देने लगे । उन सभी का कहना था कि हमें भी नई फसल पर गुरु-घर से सहायता के रुप में अनाज दिया जाता रहा है । अत: अब भी अनाज से आर्थिक सहायता की जाये । इस पर भाई काले दुलट ने गुरु के नाम की गुहार को स्वीकार करते हुए अनाज बाँटना शुरु कर दिया देखते ही देखते अनाज सारा ही बंट गया । वह खाली हाथ लौट आये । जब खाली हाथ लौटने का कारण गुरुदेव जी ने पूछा तो भाई काले दुलट ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा, हजूर यदि मैं अनाज ढुलाई करके यहां लाता तो आपने भी उसे लंगर के रुप में बांटना ही था । अत: मैने सोचा वहां बांटने से ढुलाई, पिसाई और पकाने के कष्ट से बचा जा सकता है सो बांट दिया है ।

इस उत्तर से गुरुदेव मुस्कुरा दिये और प्रसन्नता प्रकट की ।

भाई फेरू जी

कीरतपुर में जो खेत गुरु-घर के अधिकार क्षेत्र में थे । उनमें फसल पक्क ने पर खेतिहर मजदूर कटान कर रहे थे मजदूरों के भोजन की व्यवस्था श्री भगतू जी कर रहे थे वह लंगर से तैयार भोजन लेकर खेतों में पहुंच जाते और मजदूरों को संतुष्ट कर देते । एक दिन भोजन के समय एक फेरीवाला घी बेचता हुआ वहां से गुजरा उसने घी खरीदो की हांक लगाई उस समय मजदूर भोजन करने के लिए बैठने ही वाले थे एक मजदूर ने भाई भगतू जी से आग्रह किया यदि भोजन के साथ थोड़ा-2 घी मिल जाए तो हम आप के सदैव अभारी रहेंगे । इस पर भाई भगतू जी ने फेरी वाले को आवाज लगाई और कहा प्रत्येक मजदूर की दाल में पल्ली -2 घी डाल दो हम कल घी के दाम यही दे देंगे । आज्ञा का पालन करते हुए फेरी वाले ने वैसा ही किया और घर चला गया उसने घी की कुप्पी कीली पर टांग दी । जब वह अगले दिन फिर से घी बेचने के लिए चलने लगा तो उसने कुप्पी को जांचा कि कितना घी बिका है किन्तु उसने पाया कुप्पी तो पूरी भरी पड़ी है उस में घी की कमी तो हुई ही नहीं वह आश्चर्य में पड़ गया किन्तु प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता तो थी नहीं अत: उसने अनुभव किया यह बरकत गुरु-घर की ही है उसने इस बरकत को पुन: देखना चाहा वह अगले दिन फिर से मध्यान्तर के समय वहीं पहुंच गया जहां मजदूर भोजन करने की तैयारी कर रह थे उसने आज बिना मांगे सभी मजदूरों को घी बांटा और पैसे नही लिये । भाई भगतू जी द्वारा बल देने पर कि वह अपना दाम ले जाय किन्तु फेरी वाला कहने लगा आज की सेवा मैं अपनी तरफ से कर रहा हूं इस लिए दाम नहीं लूंगा । घर जाकर उसने प्रतिदिन की भांति आज भी घी की कुप्पी टांग दी और अगले दिन जांचा तो फिर पाया घी तो वैसा का वैसा ही है कुछ भी कम नही हुआ । इस बार वह गम्भीर होकर इस बरकत का कारण सोचने लगा अन्त में वह इस निर्णय पर पहुंचा कि सतगुरु के नाम पर की गई सेवा के कारण बरकत पड़ जाती है । उसने अपने मन को समझाया कि जिस जिस सतगुरु के सिक्खों की सेवा करने पर इतनी बरकत पड़ती है क्या ही अच्छा हो कि मैं अपने आप को उन के समक्ष समर्पित कर दूं और फिर निष्काम और निस्वार्थ सेवा करुं । उसने इस विचार को व्यवहारिक रूप दे दिया । उसने फेरी का धंधा त्याग कर लंगर में दिन-रात सेवा प्रारम्भ कर दी । उसे कोई नाम से तो जानता नहीं था इस लिए फेरी वाला के नाम से प्रसिद्व हो गया । गुरुदेव उसे भाई फेरु कहकर सम्बोधित करते थे । एक दिन गुरुदेव भाई फेरु की से रीझ उठे उस की सच्ची लगन देखकर उन्होंने उसे अपना मसंद (मिशनरी) बना कर उसके पैतृक ग्राम भेज दिया और कहा-वह अपने क्षेत्र में गुरमति का प्रचार-प्रसार करे । इस फेरी वाले का वास्तविक नाम संगतिया (संगत राम) था यह युवक गांव अंबमाड़ी तहसील चूनियां, जिला लाहौर का निवासी था । गुरुदेव जी की कृपा दृष्टि होने पर वह अपने क्षेत्र में एक प्रचारक के रुप में कार्यरत रहने लगे । जाते समय गुरुदेव जी ने उन्हें आशिश दी थी कि खजाना हमारा हाथ तुम्हारा रहेगा । जाओ दिल खोल कर लंगर चलाओ ।

भाई संगतिया (फेरु जी) गुरु आदेश का पालन करते हुए अपने पैतृक ग्राम में गुरु के नाम का दिन-रात लंगर चलाने लगे । एक दिन कुछ अभ्यागत देर से आये लंगर बांटते समय सेवादार ने उन्हें रात की रोटियां बांट दी तभी इत्फाक से इसोई घर से ताजे परोंठे आ गये और वह भी बांट दिये गये । इस प्रकार विभाजन में भिन्नता आ गई संगत में किसी को ताजे परोठे और किसी को बासी रोटी मिली । इस पर एक अभ्यागत ने भाई फेरु जी से कह ही दिया भाई जी आपने तो गुरु का लंगर कांना कर दिया है । भाई जी ने तुरन्त भूल का स्वीकार किया और कहा मुझे क्षमा करें । मैं भले ही कांना हो जाऊं पर आइंदा लंगर कांना नही होने दूंगा ।

भगत का वचन सत्य सिद्ध हुआ, वह स्वयं काने हो गये और वह बहुत सावधानी से लंगर चलाने लगे जब यह बात गुरु देव जी श्री हरिराय जी को मालूम हुई तो वह बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने भाई संगतियां (फेरू जी) को वरदान दिया और कहा तेरे नाम के भी सदैव लंगर चलते रहेंगे ।

गुरु वाणी का आदर

एक बार दूर प्रदेश से संगत काफिले के रुप में गुरु हरिराय जी के दर्शनों के लिए कीरतपुर पहुंची । उस समय गुरुदेव मध्यान्तर के भोजन उपरान्त अपने शय्यन कक्ष में पलंग पर विश्राम कर रहे थे । संगत में दर्शनों की तीव्र इच्छा थी । वे शब्द गायन करते हुए गुरुदेव के कक्ष के समक्ष पहुंच गये । शब्द की मधुर ध्वनि सुनते ही गुरुदेव तीव्र गति से सगंत का स्वागत करने के अभिलाषा से उठे जिस कारण उन्हें असावधानी के कारण पलंग के पाये से टक्कराने से चोट लग गई और रक्त स्राव प्रारम्भ हो गया । संगत में से मुख्य सज्जनों ने आप से प्रश्न किया यह वाणी आप की ही है फिर आपने इतनी शीघ्रता क्यों की जिससे आपको चोट लग गई । गुरुदेव जी ने बहुत सहज में उत्तर दिया : वाणी ही वास्तविक गुरु है यह शरीर तो एक माध्यम है जिस द्वारा वाणी की उत्पत्ति हुई है । जैसा कि आप जानते ही हैं शरीर तो नशवर है जबकि वाणी अमर-अभिनाशी है अत: हमें वाणी का आदर हर समय हर पल करना चाहिए ।

वाणी की महिमा

श्री गुरु हरिराय जी के दरबार में कुछ जिज्ञासुओं ने एक दिन निवेदन किया। हे गुरुदेव ! हम गुरु वाणी पढ़ते हैं किन्तु कहीं-कहीं अर्थ-बोद्ध में कठिनाई आती है। ऐसे में बिना अर्थ के पाठ कोई सार्थक जीवन नहीं दे सकता है ? उत्तर में गुरूदेव ने कहा- प्रश्न बहुत महत्वपुर्ण है इस का उत्तर हम युक्ति से देंगे, जिस से आप मे मन का संशय निवृत हो सके । आप जी ने सभी जिज्ञासुओं को नगर की सैर करने के लिए अपने साथ चलने के लिए कहा-नगर की गलियों में से होते हुए सभी नगर के बाहर एक उद्यान में पहुच गये तभी गुरूदेव जी ने एक सिक्ख को संकेत किया और कहा-देखो वह दूर धूप में कुछ चमक रहा है उसे यहां ले आओं । सिक्ख तुरन्त गया और वह वस्तु जो चमक रही थी उठा लाया । वास्तव में वह एक मकरवन की मटकी का टूकड़ा था । जिस में कभी कोई गृहणी घी इत्यादि रखती थी । गुरूदेव जी ने अब उन जिज्ञासुओं पर प्रश्न किया यह मटकी का टुकड़ा क्यों चमक रहा था । उन में से एक ने उत्तर दिया, इस में कभी घी रखा जाता था, अभी भी इस घी की चिकनाहट ने धूप में उस प्रकाश को परवर्तित कर प्रतिबिम्बत किया हैं ।

इस पर गुरूदेव जी ने निर्णय दिया जैसे यह मटकी का टूकड़ा कभी घी के सम्पर्क में आया था परन्तु उसने अभी भी चिकनाहट नहीं त्यागी । ठीक इसी प्रकार जो हृदय गुरू वाणी के सम्पर्क में आ जाता हैं उस का प्रभाव चिर स्थाई बना रहता है भले ही अर्थ-बौद्ध उस व्यक्ति को उस समय न भी मालुम हो ।

गुरू दंभ का परिणाम

श्री गुरू हरिराय जी एक दिन अपने सेवको के साथ सैर करने जा रहे थे । रास्ते में एक विशाल काय सांप खेतों से निकल कर सड़क पर आ गया । उस के शरीर पर अन्नत चींटियाँ चिपकी हुई थी और सांप अनेक स्थानों से घायल था उस का जगह जगह से रक्त स्राव हो रहा था और वह चीटियों के काटने के कारण छट पटा रहा था । इस दुर्दशा में सांप को देखकर गुरूदेव रूक गये उन्होंने तभी अपने तरकश से एक बाण निकाला और उस सांप के सिर को भेद दिया । इस प्रकार सांप की मृत्यु हो गई ।

इस दृश्य को देखकर सेवको ने गुरूदेव से सांप के विषय में जानने की जिज्ञासा की । गुरूदेव जी ने अपने प्रवचनों में बताया कि 'यह सर्प पूर्व जन्म में एक आचार्य (ब्राहम्ण) था । इसे अपनी पूजा-मान्यता करवाने की सदैव इच्छा रहती थी अत: यह जन-साध ारण में अपने को आध्यात्मिक गुरू प्रतिष्ठित करवाता था । लोग गुरू दंभ के आड़म्बर में फंस जाते थे । इस प्रकार यह जनता का शौषण कर के अपना घर भरता था ।

जनता पूर्ण गुरू रूप जान कर मोक्ष प्राप्ति के विचार से इसे पूजती थी किन्तु वास्तविकता से अनभिज्ञ थे कि महाशय केवल पारवण्ड करते है । इसने तो परम ज्योति से कभी साक्षात्कार किया ही नही था, अत: यह दम्भी गुरू और इस के शिष्य कल्याण प्राप्त नहीं कर सके । इस लिए इन सब को पुनर जन्म मिला जिस में इस के शिष्य चीटियाँ बनकर अपने शौषण किये गये माल का हिसाब मांग रही है । अब यह हमारी शरण में आया है तो इस का कल्याण करना हमारा कर्त्वय बनता था सो वह कार्य हमने कर दिया है ।

असहाय वर्ग का मसीहा

श्री गुरू हरिराय जी गुरमति का प्रचार करने अपने आस पास के क्षेत्रों का दौरा करने निकले । उन दिनों बस्तियां कम और जंगल अधि क होते थें । आप जी पंजाब के मालवा क्षेत्रों में से गुजर रहे थे, तभी वहां के स्थानीय ज़मीदार लोग आप के पास आये और विनती करने लगे । हमें अपना सिख (शिष्य) बना लें । गुरूदेव जी ने उन के हृदय को टटोला । उन से लम्बा विचार विर्मेश किया । अतं में कहा -"सिक्खी कमाणी कठीन है, इस में आत्म सम्पर्ण चाहिए । केवल बातों से सिक्खी नहीं मिलती!, करनी-कथनी में समानता का नाम

है सिक्खी ! यह कार्य आप लोंगो से नहीं होगा क्योकि आप सभी में माया का बड़प्पन है कि हम बहुत बड़े भुमिपति है इत्यादि "। इस प्रकार गुरूदेव ने कौड़ियां जाति के लोगों को सिक्खी के योग नही माना और अपनी दृष्टि से रद्द कर दिया ।

उन्हीं दिनों स्थानीय मराझ जाति के लोग, जो कि कबीलों के रूप में स्थान-2 पर विर्चण करते रहते थे । गुरूदेव की शरण में आये और उन्होंने गुरूदेव के प्रति बहुत श्रद्धा व्यक्त की । उन का व्यवहार बहुत ही शालीनता पूर्ण था । गुरूदेव प्रसन्न हुए । उन्हें सिक्खी बख्शी । उन में से एक मराझ ने गुरूदेव जी को अपने कष्टों का वृत्तांत सुनाया । उसने कहा -हम भूमि हीन है । इसलिए स्थान स्थान पर भटकतें फिरते है । इन दिनों आप के निकट हमने भी डेरा डाला हुआ है, किन्तु हमें यह उच्च जातिये अपने कुंओ से पानी नहीं भरने देते । यदि कोई हमारी महिला वहां से पानी ले भी आती है तो कौड़िया जाति के युवक हमारी महिलाओं की खिल्ली उड़ाते है और उन से अभद्दर व्यवहार करते है । अभी कल की बात है । हमारें यहां की नवी नवेली दुलहन को उन्होंने व्यंग करके अपमानित किया है ।

गुरूदेव जी ने इस घटना को बहुत गम्भीर रूप में लिया । उन्होंने स्थानीय पंचायत को बुला लिया और उनसे इस घटना का उत्तर मांगा ? पंचायत ने न्याय की बात तो क्या करनी थी । उल्टा दोष लगाने लगे, यह लोग हमारी भूमि पर अवैध रूप में रहते है और हमें ही आँखें दिखातें हैं । इस पर गुरूदेव जी ने पंचायत से आग्रह किया । आप इन लोगों को स्थाई रूप में बसने के लिए कुछ भूमि दे दें । तो यह अपने लिए सभी प्रकार की सुविधाएं धीरे-धीरे जुटा लेंगे । किन्तु स्थानीय चौधरी ने एक नहीं मानी और कहा - "हम इन्हें अपने निकट कहीं भी बसने नहीं देगें । गुरूदेव जी ने भी इस हठधर्मी को अपने लिए चुनौती माना ।

गुरूदेव जी ने मराझ कबीले के सरदार को बुलाकर कहा - "आप चिंता न करें । आप अपने समस्त युवकों को हमारे सैन्य बल से सैनिक प्रशिक्षण के लिए भेंज दे । हमारे सैन्य बल से शिक्षा प्राप्त करें और सभी अस्त्र-शस्त्रों से लैस हो जाओं । मराझ कबीले ने गुरू आज्ञा प्राप्त होते ही ऐसा ही किया । जब उन का सैनिक प्रशिक्षण समाप्त हुआ । तब गुरूदेव जी ने उन्हें सुझाव दिया । आप लोगों को जितनी गुजर-बसर के लिए भूमि चाहिए । उतनी ही पर कोई उचित स्थान देखकर कब्जा कर लें ।

गुरूदेव के आदेश के अनुसार मराझ कबीले ने वहां से कूच करके एक उपजाऊ भूमि पर कब्जा कर लिया । वहां का भूपति 'जैत पुराणा' इस बात पर बहुत कोधित हुआ । उसने मराझ कबीले को संदेश भेजा कि वे एक दिन के भीतर यहां से कहीं और चले जायें । अन्यथा सभी को मार-काट दिया जायेंगा । उत्तर में मराझ कबीलें के सरदार ने गुरू हरिराय जी का आदेश सुनाया कि उन्होंने हमें यहां बसने के लिए भेजा है । किन्तु भूपति जैत पुराणा अभिमान में आ गया और अहंभाव में कहने लगा कौन गुरूजी ? मैं नहीं जानता किसी गुरू को । उसने फिर से समय सीमा निर्धारित कर दी और कहा -' यदि वह एक दिन के भीतर अपना डेरा यहां से नहीं उठाते तो वह उन्हें बलपूर्वक खदेड़ देगा । इस बात की उन्होंने गुरूदेव को सुचना दी । गुरूदेव जी ने उनको धैर्य से काम लेने को कहा और संदेश भेजा । तुम युद्ध के लिए तैयार रहो । जैसे ही तुम पर आकमण हो उस का उत्तर सहास और वीरता से दों । प्रभु पर भरोसा रखो, रणक्षेत्र में अवश्य ही तुम्हारी विजय होगी । गुरूदेव की आशिष प्राप्त कर के मराझ कबीले का आत्मविश्वास जागृत हो गया । निर्धारित समय सीमा समाप्त होने पर दोनों पक्षों के योद्धा रणक्षेत्र में उतरे । भूपति जैत पुराणा को कदापि आशा नही थी कि मराझ कबीला उन से लोहा लेने को तत्पर होगा । उस का विचार था, हमारे जवानों को देखते ही वे भाग खड़े होगें और क्षमा याचना करेगें । किन्तु जब कड़ा मुकाबला हुआ तो कुछ ही देरी में जैत पुराणा मारा गया और उस के जवान रणक्षेत्र छोड़ भाग खड़े हुए । इस प्रकार मैदान मराझ कबीले के हाथ लगा । वे गुरूदेव का धन्वाद करने गुरू चरणों में हाज़िर हुए । इस प्रकार गुरूदेव ने असहाय कबीले को समर्थन देकर आत्म निर्भर बना दिया ।

दारा शिकोह और सत्ता परिवर्तन

सन् 1658 ईस्वी का समय था, उन दिनों सम्राट शाहजहाँ बहुत सख्त बीमार रहने लगा। वह वृद्धावस्था में थे। इस कारण देश का शासन संचालन करने में वह असमर्थ हो गये थे। सम्राट के चार पुत्र थे। उनके नाम क्रमश: दारा शिकोह, शुजाह मुहम्मद, औरंगजेब और मुराद बख्श। सम्राट ने सभी को अलग अलग प्रान्तो के राज्यपाल नियुक्त कर दिया था परन्तु इन सभी के हृदय में पूरे देश का सम्राट बनने की इच्छा थी। दारा शिकोह सम्राट का बड़ा और योग्य पुत्र था, इसलिए वह चाहता था कि उनके बाद दिल्ली का तख्त शाहजादे दारा शिकोह को ही मिले। परन्तु ऐसा होना सरल नहीं था क्योंकि सत्ता प्राप्ति की होड़ में औरंगजेब सबसे आगे था। औरंगजेब सम्राट बनने के लिए कुछ भी कर सकता है। यह बात सम्राट शाहजहाँ को अच्छी तरह मालूम थी। अत: उसने दारा शिकोह को अपने निकट रखा और अपनी बीमारी का समाचार छिपाने के लिए भरसक प्रयास किये, किन्तु उसकी बेटी रोशनआरा सभी प्रकार की सूचनाएं औरंगजेब को दक्षिण भारत में भेज रही थी। पिता की बीमारी की सूचना पाते ही कपटी प्रवृत्ति का स्वामी औरंगजेब ने संदेश भेज कर अपने छोटे भाई मुरादबख्श को अपने साथ गांठ लिया। उसे कहा कि मैं शासन करने का मोह नहीं रखता। मैं हज़ करने मक्के चला जाऊँगा। बस मुझे एक ही चिन्ता है कि कहीं दाराशिकोह जैसे काफिर बादशाह न बन जाये। यदि वह बादशाह बन गया तो इस्लाम खतरे में पड़ जायेगा। मुरादबख्श औरंगजेब के झांसे में आ गया उसने औरंगजेब का साथ दिया, दोनों की संयुक्त सेना ने दारा शिकोह को पराजित कर दिया, वह आगरा से दिल्ली भागा किन्तु यहाँ पर भी औरंगजेब ने कपटी चालों के कारण वह टिक नहीं सका। औरंगजेब ने बीमारी की हालत में पिता शाहजहाँ को गिरफतार कर लिया और आगरे के किले में कैदी के रूपमें नजरबंद कर दिया।

दिल्ली की विजय का जश्न मनाया गया। इस जश्न में प्रीती भोज के समय मक्कार औरंगजेब ने शुजाह मुहम्मद को विष देकर मार डाला तथा मुरादबख्श को पकड़ कर उसके किसी पिछले अपराधा पर मृत्यु दण्ड दे दिया। अब सिर्फ रह गया था केवल दारा शिकोह। दारा शिकोह छल की नीति नहीं जानता था। अत: बल होते हुए भी पराजित होकर दिल्ली से लाहौर में शरण प्राप्त करने की आशा से भागा। औरंगजेब उस का पीछा करने लगा क्योंकि वह उसे ठिकाने लगाना चाहता था।

इस उथल–पुथल से देश में अराजकता फैल गई थी। शासन व्यवस्था बिगड़ चुकी थी। श्री गुरू हरिराय जी इन बदलती परिस्थितियों में सतर्क थे, परन्तु वह तटस्थ रहना ही उचित समझते थे। औरंगजेब ने दारा शिकोह को काफिर घोषित कर दिया और वह उसकी टोह लेता हुआ उसका पीछा करने लगा। दिल्ली की पराजय के पश्चात् दारा शिकोह एकदम निराश्रित हो गया था। इस हालात में उसे गुरू हरिराय जी की याद आ गई। वह असहाय व्यवस्था में गुरूदेव जी दर्शनों के लिए कीरतपुर पहुँचा। किन्तु उन दिनों गुरू हरिराय जी अपने मुख्यालय कीरतपुर में नहीं थे। वह योजना अनुसार प्रचार दौरे पर गोइंदवाल व खडूर साहब इत्यादि स्थानों पर विचरण कर रहे थे, जैसे ही उसे मालूम हुआ कि गुरूदेव गोइंदवाल में हैं तो दारा शिकोह उसी समय लगभग पाँच सौ सैनिकों के साथ गुरूदेव जी से मिलने चल पड़ा।

श्री गुरू हरिराय जी उससे बड़े प्रेम से मिले। सहानुभूति प्रकट की। संघर्ष करने की प्रेरणा दी। दारा शिकोह का क्षीण आत्मबल गुरूदेव का स्नेह पाकर पुन: जीवित हो उठा। किन्तु वह त्यागी प्रवृति का स्वामी अब सम्राट बनने की इच्छा नहीं रखता था। वह गुरूदेव के चरणों में प्रार्थना करने लगा, मुझे तो अटल साम्राज्य चाहिए। मैं इन क्षणभंगुर ऐश्वर्य से मुक्ति पाना चाहता हूँ। गुरूदेव ने उसे सांत्वना दी और कहा – यदि तुम चाहो तो हम तुम्हें तुम्हारा खोया हुआ राज्य वापिस दिलवा सकते हैं किन्तु दारा गुरूदेव के सान्निधय में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति कर चुका था, उसे वैराग्य हो गया। वह कहने लगाकि मुझे तो अचल राज्य ही चाहिए। गुरूदेव उसकी मनोकामना देख अति प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे आशीष दी और कहा – ऐसा ही होगा।

तभी उसे सूचना मिली कि औरंगजेब उसका पीछा करता हुआ ब्यासा नदी के तट पर पहुंचने ही वाला है। दारा शिकोह ने गुरूदेव से विदा ली और एक विनती की कि उसके भाई को एक दिन के लिए ब्यासा नदी के तट पर ही रोके रखे। इस अन्तराल में वह लाहौर पहुँच सके। गुरूदेव ने उसे पूर्ण आश्वासन दिया, ऐसा ही होगा।

श्री गुरू हरिराय जी ने अपने सैनिकों को नदी के उस पार करने के लिए पतन की सभी नौकाएं अपने कब्जे में ले ली। जब औरंगजेब का सैन्य बल वहाँ पहुँचा तो उन्हें पार होने के लिए एक दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ी क्योंकि नौकाएं खाली नहीं थी। इतने समय में दारा शिकोह अपनी मंजिल लाहौर पहुँचने में सफल हो गया किन्तु अब उसके हृदय में सत्ता प्राप्ति की इच्छा समाप्त हो चुकी थी, इसलिए उसने औरंगजेब का रणक्षेत्र में सामना करने का विचार त्याग दिया और संन्यासी रूप धाारण करके किसी अज्ञात स्थान परचला गया। किन्तु औरंगजेब के गुप्तचर विभाग ने उसे खोज निकाला और उसे गिरफतार करके दिल्ली लाया गया।

अब दारा शिकोह के हृदय में कोई मलाल नहीं था क्योंकि श्री गुरू हरिराय जी के शाश्वत ज्ञान ने उसके विवेक को जागृत कर दिया था, जिससे वह अभय हो चुका था, अब उसके समक्ष मृत्यु केवल चोला बदलने के समान थी।

औरंगजेब के कट्टरवाद का विरोध

औरंगजेब ने दिल्ली के चाँदनी चौक पर सार्वजनिक रूप में दारा शिकोह की हत्या कर दी और उस का सिर एक थाली में ढक कर ईद मुबारिक वाले दिन पिता शाहजहाँ को भेजा।

अब औरंगजेब निश्चिंत था। तख्त के शेष दावेदार समाप्त हो चुके थे। विद्रोह कुचल दिया गया था। औरंगजेब के बारे में प्रसिध है कि वह कट्टर मुसलमान था। अपने धार्म के प्रति आस्था रखना निश्चय ही अच्छी बात है, कट्टर होना भी कुछ हद तक जायज माना जा सकता है परन्तु अन्य धार्मावलम्बियों के प्रति घृणा अपना शत्रुता की भावना रखना निश्चय ही अक्षम्य कार्य है और फिर शासक होकर धाार्मिक पक्षपात करना तो अत्यन्त अनुचित है। सम्राट औरंगजेब ने यही अपराध किया। देश का सर्वोत्तम पद पर आसीन होने के कारण उसे जहाँ सब के प्रति एक ही दृष्टिकोण अपनाना चाहिए था, वहीं उसने हिन्दू जनता को दूसरी श्रेणी का नागरिक बना डाला। उसने अपने दरबार में बड़े बड़े ओहदों पर तैनात हिन्दू अधिकारियों को हटा दिया और उनके स्थान पर मुसलमानों की नियुक्तियाँ कर दी। इतना ही नहीं,हिन्दुओं पर कई नये कठोर कानून लागू कर दिये। औरंगजेब ने अनेक हिन्दुओं को बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाधय किया, इन्कार करने पर उन्हें बन्दी गृह में डाल दिया जाता अथवा मृत्यु दण्ड दिया जाता। मथुरा, काशी आदि हिन्दुओं के धाार्मिक नगरों में औरंगजेब के सैनिकों ने कई मन्दिर धवस्त कर दिये और नव निर्माण रूका दिया। ऐसा जान पड़ता था कि इस्लाम के अलावा अन्य धार्मों के अनुयायियों को औरंगजेब जड़ से मिटा देना चाहता है।

इसी समय औरंगजेब की कुदृष्टि सिक्ख धार्म पर भी पड़ी। श्री गुरू हरिराय जी के समय सिक्ख सिन्त भारत की चारों दिशाओं में विकास की गति पर थे। गुरू नानक देव जी के उपदेशों और उनकी बाणियों की धाूम मची हुई थी। जन साधाारण बड़ी संख्या में सिक्ख आचरण की रीतियाँ अपना रहे थे। ईर्ष्यालु लोग इन बातों से पहले ही खफा थे, अब तो औरंगजेब का शासनकाल था। अत: उनकी बन आई थी। सिक्ख गुरूजनों और सिख आन्दोलन की बढ़ती लोकप्रियता से चिढ़े हुए लोग औरंगजेब के पास पहुँचे और खूब नमक मिर्च मिलाकर सिक्ख धार्म तथा गुरू हरिराय जी के विरूद्ध जहर उगल दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने बताया कि तुम्हारा भाई दारा शिकोह गुरू हरिराय जी से मिला था उन्होंने उसे दिल्ली का तख्त दिलवाने का आश्वासन दिया था और उन्होंने उसे लाहौर भागने का पूरा अवसर प्रदान किया। शायद इसी कारण ब्यासा नदी की सभी नौकाओं पर उनका नियन्त्रण था।

औरंगजेब बहुत जालिम प्रवृति का मनुष्य था जैसे ही उसे गुरू हरिराय का आचरण उसे अपने प्रति संदेहास्पद लगा। उसने गुरूदेव को बगावत के आरोप में गिरफतार करने का मन बना लिया। इससे पहले की वह गुरूदेव को सेना भेज कर गिरफतार करे, उसने एक पत्र गुरूदेव को उनकी खिल्ली उड़ाने के विचार से लिखा कि आपने मेरे भाई को दिल्ली का तख्त दिलवाने का वायदा किया था, जबकि मैंने उसे मृत्यु दण्ड दे दिया है। अत: आप झूठे गुरू हुए, जो अपना वायदा पूरा नहीं कर सके।

इस पत्र के उत्तर में श्री हरिराय जी ने लिखा। हमने तो दारा शिकोह को कहा था कि हम तुझे सत्ता वापिस दिलवा देते हैं किन्तु वह अचल राज्य सिहांसन चाहता था। अत: हमने उसकी इच्छा अनुसार वही उसे दे दिया है। यदि तुम्हें हमारी बात पर भरोसा न हो तो रात को सोते समय तुम दारा शिकोह का धयान धार कर नींद करना तो वह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो जाएगा।

पत्र मिलने पर औरंगजेब ने ऐसा ही किया। स्वप्न में औरंगजेब ने देखा कि एक अद्‌भुत सजावट वाला दरबार सजा हुआ है, जिसमें बहुत से ओहदेदार शाही पोशाक में दारा शिकोह का स्वागत कर रहे हैं। फिर उसने अपनी ओर देखा तो उसके हाथ में झाड़ू है, जिससे सजे हुए दरबार के बाहर सफाई कर रहा है, इतने में एक संतरी आता है और उसे लात मार कर कहता है कि यह तेरी सफाई का समय है, देखता नहीं कि महाराजा दारा शिकोह का दरबार सज चुका है। लात पड़ने की पीड़ा ने औरंगजेब की निद्रा भंग कर दी और उसको बहुत कष्ट हो रहा था। बाकी की रात औरंगजेब ने बहुत बेचैनी से काटी। सुबह होते ही उसने एक विशाल सैन्य बल श्री गुरू हरिराय जी को गिरफतार करने के लिए जालिम खान के नेतृत्त्व में भेजा।

जालिम खान अभी रास्ते में ही था कि हैजे का रोग फैल गया, बहुत से जवान हैजे की भेंट चढ़ गये। जालिम खान भी हैजे से न बच सका और रास्ते में ही मारा गया। इस प्रकार यह अभियान विफल हो गया और सेना वापिस लौट गई।

कुछदिन पश्चात् औरंगजेब ने कंधाार के वरिष्ठ सैनिक अधिकारी दूंदे के नेतृत्त्व में सेना भेजी, किन्तु मार्ग में ही सैनिक टुकड़ियों में वेतन के विभाजन को लेकर आपस में ठन गई, इस तू-तू मैं-मैं में जरनैल दूंदे मारा गया। सेना फिर बिना नेतृत्त्व के वापिस लौट गई।

तीसरी बार औरंगजेब ने बहुत सख्त तैयारी के पश्चात् सहारनपुर के नाहर खान को कीरतपुर इत्यादि गुरू की नगरी धवस्त करने का आदेश देकर भेजा। जब यह सेना यमुना नदी पार करने के लिए शिविर लगा कर बैठी थी तो तभी बाढ़ आ गई, जिस कारण अधिकांश सैनिक बह गये। जो शेष बच्चे थे, वे जान गये कि यह सब गुरू के कोप के कारण ही हो रहा है, अत: वे जान बचा कर भाग खड़े हुए।

तीनों आक्रमणों की विफलता के पश्चात् औरंगजेब ने कूटनीति का सहारा लिया। उसने गुरूदेव जी को एक पत्र लिखा कि जिसकी ईबारत बहुत मीठी किन्तु छलपूर्ण थी। उसने गुरूदेव को लिखा कि हमारे पूर्वजों के सम्बन्धा बहुत मधाुर रहे हैं, मैं चाहता हूँ कि अभी जो गलतफहमी पैदा होगई है, उनका निवारण करने के लिए हम आपस में विचारविमर्श से समाधाान कर लें। अत: आप हमें दर्शन देकर कृतार्थ करें, जिससे विचारगोष्टि हो सके।

यह पत्र लेकर शाही अधिकारी कीरतपुर पहुँचे। श्री गुरू हरिराय जी ने उनकी सभी बातें शान्तचित्त होकर सुनी। बादशाह का व्यक्तिगत निवेदन भी गौर से सुना। फिर फरमाया, ऐसे बादशाह के पास जाने का कोई लाभ नहीं, जो केवल छल कपट की राजनीति ही करता है। उसने अपने पिता व भाइयों को भी नहीं बख्शा तो उन्हें भी छल कपट से खा गया है। अत: हम औरंगजेब से मिलने नहीं जायेंगे। गुरूदेव का ऐसा दो टूक उत्तर सुनकर शाही अधिकारी सकते में आ गये। वे बोले - ठीक है, आप नहीं चल सकते तो अपने किसी प्रतिनिधिा को भेज दीजिए।

रामराय का दिल्ली दरबार के लिए प्रस्थान

इस पर श्री गुरू हरिराय जी ने अपने बड़े पुत्र राम राय को बुलाया और कहा - बेटे तुम हमारे प्रतिनिधा के रूप में बादशाह औरंगजेब को मिलने और उसके हृदय के भ्रम को दूर करने जाओं, जो उसने सिक्ख सिधान्तों के प्रति गलत धाारणा बना रखी है।

गुरूदेव जी के आदेश अनुसार रामराय जब दिल्ली प्रस्थान करने लगा तो गुरूदेव जी ने उसे सतर्क किया। बेटा तुम अभय होकर सत्य पर पहरा देना, किसी राजनीतिक दबाव में न आना। देखना, औरंगजेब मक्कार है, वह छल कपट का सहारा लेगा, उसकी चालपूसी नहीं करनी। वह बहुत कट्टर प्रवृति का है, उसे उचित उत्तर देने हैं।

इस पर रामराय जी ने पिता गुरूदेव जी से निवेदन किया कि मैं तो साधाारण मनुष्य हूँ, बादशाह और उसकी जुण्डली का कैसे सामना कर पाऊँगा। उत्तर में गुरूदेव जी ने उसे आशीष दी और कहा - गुरू नानक देव तुम्हारे अंग-संग रहेंगे जो तुम कहोगे, सत्य सिध होगा। किन्तु देखना आत्मबल का कहीं दुरूपयोग न करना।

दिल्ली दरबार में पहुँचने पर रामराय ने गुरू घर की ओर से बहुत अच्छा प्रदर्शन किया जिस कारण औरंगजबे उससे बहुत प्रभावित हुआ। इस प्रकार औरंगजेब ने रामराय से भला व्यवहार किया। उत्साहित होकर रामराय ने विभिन्न प्रकार के करतब दिखाये और कई तरह के चमत्कारों की प्रदर्शनी की। कहा जाता है कि इस प्रकार के विभिन्न अनहोनी को होनी कर दिखाया। अब औरंगजेब ने धाार्मिक चर्चा चलाई। कुछ लोगों ने उसके कान भर रखे थे कि गुरू नानक देव की वाणियों में मुसलमानों के खिलाफ काफी कुछ अनर्गल कहा गया है। एक दिन औरंगजेब ने काजियों के कहने पर पूछा - तुम्हारे ग्रंथों में गुरू नानक जी की वाणी में इस्लाम की तौहीन की गई है, वह मुसलमानों के बारे में अच्छी राय नहीं रखते। उदाहरण के लिए उन्होंने लिखा है -

मिटी मुसलमान की पेड़ै पइ कुमिआर।
घरि भांडे इटां कीआ जलदी करे पुकार।
जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि-झड़ि पवहि अंगिआर।
नानक जिनि करतै कारणु कीआ सो जाणै करतार। राग आसा पृष्ठ 446

इस प्रश्न का उत्तर था कि गुरूदेव जी इस पंक्ति के माधयम से सत्य उजागर कर रहे हैं - हिन्दु पार्थिव शरीर को तुरन्त जला देते हैं, परन्तु मुसलमान के शव की जब मिट्टी बन जाती है, तो उसकी कब्र की चिकनी मिट्टी को कुम्हार, बर्तन, ईंटे इत्यादि बनाकर भट्टी में बाद में जलाते हैं। मिट्टियां ही जलती हैं, यह उस प्रकृति का नियम है।

रामराय औरंगजेब को प्रसन्न करना चाहता था। अत: उसके मायाजाल में फंस कर चापलूस बन गया था। अत: उसने खुशामद करने के विचार से कह दिया - 'मिट्टी मुसलमान की' नहीं कहा गया, 'मिट्टी बेईमान की' कहा गया है।

इस उत्तर से औरंगजेब के दिल को सुकून मिला। इस बीच दिल्ली की संगत से गुरू हरिराय जी को अपने बेटे के प्रत्येक कारनामों की जानकारी मिल चुकी थी। गुरूदेव को रामराय द्वारा औरंगजेब की चापलूसी करना बहुत ही बुरा लगा और वह नहीं चाहते थे कि अलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन एक मदारी के खेल के रूप में किया जाये। उनको सब से अधिाक दुख दायक बात गुरूवाणी की पंक्तियों में परिवर्तन करने की लगी। वह नहीं चाहते थे कि पूर्व गुरूजनों की वाणी में कोई हेर-फेर किया जाये। अत: उन्होंने एक पत्र द्वारा रामराय को सूचित किया कि तुम अपराधाी हो क्योंकि तुमने जानबूझ कर गुरूवाणी की पंक्तियों को बदला है। मैं यह सब सहन नहीं कर सकता, इसलिए हम तुम्हें घर से निष्कासित करते हैं क्योंकि यह तुम्हारा अपराधा अक्षम्य है। रामराय को इस पत्र का कोई उत्तर नहीं सूझा। अब उसे अहसास हो रहा था कि उससे बहुत बड़ी गलती हुई है। जब औरंगजेब को पता चला कि गुरू हरिराय जी ने रामराय को बेदखल कर दिया है तो उसने रामराय की सहायता करने की ठान ली। उसने रामराय को यमुना व गँगा नदी के बीच का पर्वतीय क्षेत्र उपहार में भेंट कर दिया, जो कालान्तर में देहरादून नाम से प्रसिध हुआ।

श्री गुरू हरिराय जी का देहावसान

श्री गुरू हरिराय की आयु केवल 31 वर्ष आठ माह की ही थी तो उन्होंने अनुभव किया कि उनकी श्वासों की पूँजी समाप्त होने वाली है। अत: उन्होंने गुरू नानक देव जी की गद्दी के अगले उत्तराधिकारी की घोषणा का मन बना लिया। यूं तो उनका बड़ा पुत्र योग्य था और उसका अधिाकार भी बनता था किन्तु उसकी भूल ने उसे गुरू गद्दी के लायक नहीं रहने दिया।

उनकी दृष्टि श्री हरिकृष्ण जी पर टिकी हुई थी। भले ही वह अभी अल्पायु के बालक दृष्टिगोचर होते थे किन्तु सात्विक ज्ञान की दृष्टि से वह पूर्ण थे, उनकी अलौकिक आभा इस बात का सबूत थी। ऐसा जान पड़ता था कि ईश्वर ने उन्हें किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही श्री गुरू हरिराय के घर जन्म देकर भेजा है।

श्री गुरू हरिराय जी ने दृढ़ता से निर्णय लिया और घोषणा की कि श्री हरिकृष्ण जी सिक्खों के अष्टम गुरू होंगे। इस घोषणा से उनके अनुयायियों को बहुत प्रसन्नता हुई। सिर्फ एक ही ऐसा व्यक्ति था जिसे गुरू जी का निश्चय पसन्द नहीं आया, वह था रामराय, किन्तु वह जानता था कि गुरू गद्दी कोई धारोहर वस्तु नहीं जिस पर कोई वारिस हक का दावा कर सके।

इस प्रकार श्री गुरू हरिराय जी ने अपने छोटे पुत्र जिनकी आयु उस समय 5 वर्ष के लगभग थी, को विधिावत गुरू गद्दी पर प्रतिष्ठित कर दिया।

गुरूदेव, हरिकृष्ण जी को गद्दी सौंपने के पश्चात् संवत 1718 को 7 कार्तिक रविवार तदानुसार 20 अक्तूबर 1661 को ज्योति परम ज्योति में जा समाई।